Dr. Vandana Suman
Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara
UG - Sem - IV - MJC-07
Basic Concepts of Philosophy

14 TUESDAY OCTOBER 2025 WK 42 I 287-078

"God : Yoga Darshan"

(योग दर्शन में ईश्वर विचार)

सभी दर्शनों की भाँति योग दर्शन में भी अपने ढंग से ईश्वर के स्वरूप को सिद्ध किया गया है। पतंजलि के 'योग सूत्र' (समाधिपाद 23) में कहा गया है कि ईश्वरप्रणिधान से भी समाधि आसन्न (सिद्ध) होती है। प्रणिधान अर्थात भक्तिविशेष। इसका अर्थ है परमेश्वर का अनुभव करके अपना सब कुछ उसी पर निछावर करने के लिए तैयार रहना ही भक्ति है। इस भक्ति विशेष (प्रणिधान) के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर का लक्षण देते हुए अगले सूत्र में कहा गया है: 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।' अर्थात क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से रहित पुरुष-विशेष ही ईश्वर है। अविद्यादि ही क्लेश है, पाप-पुण्य ही कर्म है, और उन कर्मों का फल ही विपाक है और उस फल (विपाक) से पैदा हुई वासनायें ही आशय है। इन सबसे जो अपरामृष्ट (अप्रभावित) है उसी को योग में ईश्वर कहा गया है। ईश्वर अनादि, मुक्त और ऐश्वर्यशाली है। ईश्वर के ऐश्वर्य के समान दूसरा ऐश्वर्य है ही नहीं। ईश्वर में सर्वज्ञ बीज निरतिशयता है; अर्थात उससे

...rned about life: it goes on.

साधन, गुण सम्पन्न कोई नहीं है। जो निर्माण की इच्छा लिए ज्ञान संपन्न होकर प्राणियों पर अनुग्रह करता है वही ईश्वर है। उसका वाचक प्रणव (ओम) है। 'कठोपनिषद' में कहा गया है कि 'ओम' अक्षर है: अर्थात् कभी न नाश होनेवाला ब्रह्म है, वही परब्रह्म है। उसके ज्ञान से उपासक जिस पदार्थ की इच्छा करता है उसको वह प्राप्त हो जाता है। इसप्रकार योग का ईश्वर एक शब्दमयी भावना है। इस भावना का स्मरण किये बिना ईश्वर का बोध नहीं हो सकता है। ईश्वर के सम्बन्ध में जो समस्त शब्दमय चिन्तन है उसी को 'ओम' शब्द के द्वारा कहा गया है। इस शब्द का यथार्थ संकेत याद आने से ईश्वर-विषयक भाव मन में प्रकाशित होते हैं। जब 'ओम' शब्द के उच्चारण से मन में 'ईश्वर' शब्द का अर्थ भली-भांति प्रकाशित हो जाय तब प्राणिधान की सफलता समझनी चाहिए।

निर्विचार एवं निर्वितर्क अर्थात शब्दशून्य भाव से भी ईश्वर का स्मरण किया जा सकता है; किन्तु व्यापक-

श्रद्धा की भावना शब्दों के बिना सम्भव नहीं है। आत्माभाव से ईश्वर का चिन्तन करने के लिए ईश्वर को सगुण तथा साकार मानना आवश्यक है।

ईश्वर प्रणिधान को समाधि का सर्वोच्च साधन माना गया है क्योंकि ईश्वर केवल ध्यान मात्र का विषय नहीं वरन वह महाप्रभु है, जिसकी कृपा से उपासक के सब पाप दूर होकर उसका मार्ग सुगम भी हो जाता है। ईश्वरप्रणिधान (अर्थात भक्ति विशेष) द्वारा ईश्वर की परम कृपाओं को प्राप्त किया जा सकता है। प्रिय जन से स्मरण करने से जिस प्रकार हृदय को सुख होता है और हृदय में उसको बार-बार स्मरण करने की इच्छा होती है और उसी प्रकार ईश्वर के स्मरण से भी जब हृदय को सुख और उस सुख को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए ईश्वर का बार-बार चिन्तन करने की उत्सुकता होती है तभी ईश्वरप्रणिधान (भक्ति) की सफलता है। प्रियजन के स्थान पर ईश्वर को रखकर उसका चिन्तन करने से भी भक्ति भावना को उत्तरोत्तर बढ़ाया

जा सकता है। जैसे भक्त को परमपिता परमेश्वर की सर्वोच्च विभूति रूप में श्रीकृष्ण और बुद्ध का प्रकाश मिलता है।

भक्तिभाव से इस प्रत्यक (चेतन) का साक्षात्कार होता है और व्याधि, अकर्मण्यता, संताप, प्रमाद, आलस्य, तृष्णा और विपर्यय ज्ञान आदि चित्त के अन्तराय हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं। प्रत्यक कहते हैं पुरुष या चेतन को। केवल पुरुष कहने से बद्ध, मुक्त पुरुष का बोध होता है। प्रत्यक चेतन से विशिष्ट पुरुष का बोध होता है। आत्मा को 'प्रत्यक्चेतन' कहते हैं। दृष्टि को अन्तर्मुखी करके आत्मा में ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इसको 'स्वरूपाधिगम' कहते हैं, अर्थात अपने ही रूप में ईश्वर को पा लेना।

योगदर्शन के अनुसार ईश्वर परमपुरुष है जो सभी जीवों से ऊपर एवं सभी दोषों से रहित है। वह नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और पूर्ण परमात्मा है। संसार के सभी जीव अविद्या,

अहंकार वासना, रागद्वेष और अभिनिवेशों आदि के कारण दुःख पाते हैं। वे भाँति-भाँति के कर्म (सुकर्म, कुकर्म और विकर्म) करते और उनके विपाक या कैवल्य प्राप्त पर भी मुक्तात्मा के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह सर्वदा से मुक्त था। केवल ईश्वर ही नित्य मुक्त कहा जा सकता है। वह सर्वबंधन रहित है। यह क्लेश, कर्म-विपाक आदि और सर्वक्लेशरहित, सबसे अप्रभावित रहते हैं। वह पूर्ण, अनन्त और अद्वितीय है। वह पूर्ण ज्ञान का भंडार है और इच्छा-मात्र से जगत का संचालन कर सकता है। वह अनन्त शक्ति और ज्ञान से युक्त सकल विश्व का नियन्ता है। वह केवल साधु इच्छाओं से पूर्ण है। इन्हीं कारणों से परमात्मा और जीवात्मा में भेद है।

ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए योग दर्शन के आचार्यों ने अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत की है। जो इसप्रकार है —

1. वेद और उपनिषदों में ईश्वर की अनादि सत्ता को स्वीकार किया गया है और उसको प्राप्त करना जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। इसलिए श्रुतिसम्मत होने से

ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

2. जिस वस्तु का परिमाण मात्रा के द्वारा जाना जाता है उसकी अल्पतम और अधिकतम, दो सीमायें होती हैं। संसार में जो अल्पतम परिमाण देखने में आते हैं उन्हें 'अणु' और जो अधिकतम परिमाण देखने में आते हैं उन्हें 'आकाश' कहते हैं। इसी प्रकार ज्ञान और शक्ति की भी सीमायें होती हैं। सर्वाधिक ज्ञान और सर्वाधिक शक्ति जिस पुरुष में हो वही परम पुरुष ईश्वर है। इस दृष्टि से भी ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

3. प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है और इनके विच्छेद से प्रलय। प्रकृति पुरुष, दोनों अलग-अलग तत्व हैं इसलिए बिना किसी मध्यस्थ के न तो दोनों का मिलन संभव है न बिछोह। यह मध्यस्थ ही प्रकृति-पुरुष के संयोग-वियोग का निमित्तकारण है और क्योंकि वह जीवों के अदृष्ट के अनुसार ही संसार की रचना तथा संहार करता है अतः वह सर्वज्ञ होना चाहिए। ऐसा सर्वज्ञ, ईश्वर ही हो सकता है। अतः ईश्वर की सत्ता प्रमाणित है।

इस तरह से योग दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित किया गया है। किन्तु इसको भिन्न प्रमाणों से समर्थित किया गया है इनसे योग दर्शन का ईश्वर हमें किसी महत्त्वपूर्ण पद का अधिष्ठाता नहीं दिखायी देता। सांख्य में जो स्थान विवेक को दिया गया है वही स्थान योग में ईश्वर को दिया गया है।

…nal: failure is not fatal: It is the courage to continue that counts.